ISSN : 2454-308X
Volume : 03
Issue : 05

INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
REFEREED | PEER REVIEWED

July - September 2017

भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की संकल्पना

Dr. Indira Singh
Assistant Professor, Department of Education,
Maa Singhwahini Mahavidyalaya, Auraiya (U.P.). INDIA

ABSTRACT

मानव जीवन के तीन पक्ष होते हैं– शरीर, मन और आत्मा। चरक संहिता में इन्हें 'त्रिदण्ड' के नाम से अभिहित किया गया है। इन्हीं त्रिदण्ड का संयुक्त परिणाम ही व्यक्तित्व है। प्राचीन हिन्दू दार्षनिकों ने व्यक्तित्व विकास के लिए मानसिक नियंत्रण को आवष्यक माना है। व्यक्ति का शरीर या मुखमुद्रा, बुद्धि, स्वाभाव, सामाजिक एवं सांवेगिक गुणों तथा अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का समन्वित, सम्पूर्ण तथा अद्वितीय व्यवस्था ही व्यक्तित्व है। उपनिषद् के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का केन्द्र जीवात्मा होती है। उपनिषद् में इसके पाँच रूप बताए गए हैं– अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष। वैदिक चिन्तन में व्यक्तित्व विकास की संकल्पना के अन्तर्गत गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त का समस्त काल खण्ड समाहित है। इसमें जीवन को सौ वर्ष का माना गया है। श्रीमद्भगवतगीता में व्यक्तित्व को तीन भागों में विभाजित किया है– सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी। बौद्ध दर्शन में व्यक्तित्व विकास की धारणा को चार आर्य सत्य तथा आष्टांगिक मार्गों के विष्लेषण द्वारा समझा जा सकता है तथा व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास इन्हीं के अनुसरण से संभव है। इस दर्शन के अनुसार व्यक्ति का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व मानवीय दृष्टि से परिपूर्ण हो।

KEYWORDS : भारतीय परिप्रेक्ष्य, व्यक्तित्व, त्रिदण्ड, वैदिक दर्शन, बौद्ध दर्शन।

मानव–जीवन के तीन पक्ष होते हैं– शरीर, मन और आत्मा। इन तीनों पक्षों के संयुक्त होने अथवा मिलने से ही व्यक्ति के जीवन में पूर्णता के दर्शन होते हैं। ये तीनों पक्ष एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और एक–दूसरे पर आश्रित भी। साधारण शब्दों में इन तीनों पक्षों में से यदि एक पक्ष भी दोषग्रस्त हो जाए तो उसका तत्काल प्रभाव अन्य दो पर पड़ता है तथा तीनों पक्षों के संतुलन में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इसी बात को चरक संहिता में इस रूप में उल्लिखित किया है– 'सत्वामात्मा शरीर च त्रिदण्डवेत्'। इसलिए प्राचीन समय में शरीर, मन और आत्मा को 'त्रिदण्ड' के समान माना गया था।

इन्हीं त्रिदण्ड का संयुक्त परिणाम ही व्यक्तित्व है। इसमें आत्मा ही मानव व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु है। प्राचीन हिन्दू दार्शनिकों ने व्यक्तित्व विकास के लिए मानसिक नियंत्रण को आवश्यक माना है। वर्तमान रूप में किसी विशेष परिस्थिति में एक व्यक्ति के सामने अन्य व्यक्ति जिस प्रकार स्वयं को प्रस्तुत करता है अथवा जिस प्रकार का व्यवहार प्रकट करता है, उसे उसका व्यक्तित्व कहा जाता है। यह उसके शरीर या मुखमुद्रा, बुद्धि, स्वाभाव, सामाजिक एवं सांवेगिक गुणों तथा अभिवृत्तियों एवं मूल्यों द्वारा अलग–अलग न होकर उनकी एक समन्वित (Integrated)] सम्पूर्ण (Whole) तथा अद्वितीय (Unique) व्यवस्था है। सामान्य शब्दों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांवेगिक या चारित्रिक गुण सभी का संगठित रूप व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।

उपनिषद् के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का केन्द्र जीवात्मा होती है। व्यक्तित्व सरंचना के विभिन्न तत्व उस केन्द्र के चारों तरफ सतह या आवरण का निर्माण करते हैं और आवरण की विभिन्न तहें अथवा परतें चेतना या पुरूष के विभिन्न अनुवर्ती अवस्थओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं। पुरूष की इन विभिन्न अवस्थाओं को कोष कहा गया है। इन पाँचों कोषों का विवरण इस प्रकार है–

1. **अन्नमय कोष–** इसमें व्यक्ति का दैहिक शरीर तथा ज्ञानेन्द्रियाँ सम्मिलित होती है। इसके अन्तर्गत संभाषण यंत्र, हाथ, पैर, उत्सर्जन अंग एवं जनन अंग सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् आँख, कान, नाक, मुँह तथा त्वचा भी सम्मिलित होते हैं।
2. **प्राणमय कोष –** इसके अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन को बनाए रखने वाले 'पाँच जैव बल' या 'पंचतत्व' अर्थात् वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा आका"ा इसमें सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पाँच क्रिया प्रधान कर्मोन्द्रयाँ सम्मिलित होती हैं। (हाथ, पैर, मुँह, गुदा, जननेन्द्रीय)
3. **मनोमय कोष–** 'जैव बल' अथवा 'जैव आवरण' के पश्चात यह आत्मा की तीसरी तह अथवा परत होती है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध मुख्यतः मन से ही होता है। इसे मानसिक आवरण भी कहा जाता है। यह छह तत्वों से

ISSN : 2454-308X
Volume : 03
Issue : 05

INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
REFEREED | PEER REVIEWED

July - September 2017

मिलकर बना है, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक मन सम्मिलित है। संकल्प, इच्छाओं, भावों, विकल्प, कामनाओं आदि का उदय इसी मनोमय कोष में होता है।

4. **विज्ञानमय कोष–** इसका सम्बन्ध व्यक्ति की बौद्धिक प्रकृति एवं विकास से है। यह भी छह तत्वों के संयोग अर्थात पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा छठा ज्ञानात्मक तत्व 'बुद्धि' के होने से बना सम्मिलित है। व्यक्ति का यही कोष उसे चिन्तन, मनन करने योग्य तथा निर्णय लेने योग्य बनाता है। श्रीमद्भगवत्गीता में इस बुद्धि को तीन रूपों में व्याख्यायित किया गया है– सात्विक, राजसी और तामसी। इसमें सात्विक बुद्धि ही आत्मा से प्रकाशित होती है।

5. **आनन्दमय कोष –** यह व्यक्तित्व विकास की चरम अथवा अन्तिम स्थिति है। इस कोष में आत्मा का निवास होता है। आनन्द का वर्णन शब्दों में नही किया जा सकता, क्योंकि यह अनुभूति जन्य है। यह इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि से परे हैं। यहाँ आकर समस्त शंकाए और भ्रान्तियाँ मिट जाती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति तार्किक बुद्धि से ज्ञान का संचय करता है परन्तु विवाद के लिए नहीं अपितु आत्मा एवं जगत की वास्तविक स्थिति जानने के लिए। यही आनन्दमय स्थिति है इसी को मुक्ति कहा जाता है तथा इसी का नाम आत्मानुभूति है।

अतः हम कह सकते है कि भारतीय मनोविज्ञान की दृष्टि में पाँच कोष (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय), पाँच तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के साथ–साथ पाँच विषय (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द) पाँच कमेन्द्रियाँ (मुख, हाथ, पैर, मलनिष्कास्नेन्द्रिय, प्रजननेन्द्रिय), पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ (कर्ण, त्वचा, चक्षु, रसना, प्राण), तीन गुण (तम, रज, सत) और अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) की सारी वृत्तियों के साथ व्यक्ति दृष्टा बनकर साक्षी भाव से इस जगत को देखने लगता है, तभी उसे विकसित व्यक्ति कहते हैं और वह सांसारिक सुख–दुख की इस दुनिया में न भटकते हुए उस परमानन्द की प्राप्ति करता है।

व्यक्तित्व विकास की वैदिक संकल्पना– वैदिक चिन्तन में व्यक्तित्व विकास की संकल्पना के अन्तर्गत गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त का समस्त काल खण्ड समाहित है। इसमें जीवन को सौ वर्ष का माना गया है। इस जीवन को चार अवस्थाओं (आश्रमों) में बाँटा गया है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यांस। प्रत्येक विकासात्मक अवस्था हेतु विकासात्मक कार्यों के पालन की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। इस व्यावहारिक आचार–संहिता को ही 'धर्म' कहते हैं। इस प्रकार छात्र धर्म, गृहस्थ धर्म, वानप्रस्थ धर्म और सन्यास धर्म की व्यापक और विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। इन सभी धर्मों के पालन को ही मानव कर्तव्य धर्म कहा गया है। वेदों में यह कहा गया है कि–

''एनावज्जन्म साफल्यं देहिनामदेहिषु।
प्राथैरथैधिया वाचाश्रेय एवाचरेत सदा।।''

(मानव जन्म एवं शरीर की सफलता इस बात में ही है कि वह मन, वचन से सर्वदा श्रेष्ठ कर्म करें) अर्थात् व्यक्तित्व का विकास सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैश्विक दृष्टि से श्रेष्ठ कार्य करना ही है।

जन्म से पच्चीस वर्ष तक की आयु को 'ब्रह्मचर्य आश्रम' कहा गया है। इस आयु वर्ग में व्यक्तित्व के विकास का ऐसा सुनियोजित प्रयास किया जाता था कि व्यक्ति का व्यक्तित्व इस प्रकार बने कि वह गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम की सीढ़ियों पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ते हुए आत्मानुभूति अथवा आत्मसाक्षात्कार अथवा मोक्ष प्राप्ति कर लक्ष्य प्राप्त कर सकें। व्यक्तित्व के विकास में चिन्तन, मनन, निदिध्यासन की प्रक्रियाओं का सहारा लेते हुए ही आत्म साक्षात्कार करने में सफल होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास में जीवन के किसी भी आयाम को छोड़ नहीं जा सकता। अथर्ववेद के अनुसार,

''मनसे चेतसेधिय आकूतय उत चित्तए।
मत्यै श्रुताय चक्षुसे विधोम हविषा वयम्।।''

–अथर्ववेद (06/41/1)

अर्थात् मन अन्तः करण, सम्यक् ज्ञान, धारणाशक्ति, प्रतिभाशक्ति, चेतनाशक्ति और मनन शक्ति, गुरू के उपदेश (व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया) द्वारा श्रवण शक्ति तथा अन्तदर्शन आदि की क्षमता प्राप्त करना एवं विकसित करने का हम यज्ञ कर्म (प्रयास) करें।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में बौद्धिक (ज्ञानात्मक), धार्मिक (भावात्मक), शिक्षण और प्रशिक्षण को अत्यधिक महत्व दिया गया है।

व्यक्तित्व सिद्धान्त– भारतीय दर्शन के अनुसार व्यक्तित्व को तीन भागों में विभाजित किया गया है। इसका उल्लेख श्रीमद्भगवत् गीता में भी किया गया है–

(i) **सतोगुणी**– ऐसे व्यक्तियों में सत्व तत्व की प्रधानता होती है। यह व्यक्तित्व सर्वोत्तम माना गया है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति सद्गुणों से युक्त होते हैं और आत्मा तथा परमात्मा में तादात्मय स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। इनमें मुख्य एवं अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। ऐसे गुणों वाले व्यक्ति को दैवीय शक्ति से युक्त माना जाता है।

(ii) **रजोगुणी**– यह एक सामान्य व्यक्ति है। इसमें अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ समान रूप से पायी जाती है। साधारण शब्दों में ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में सत् और तम दोनों का समावेश होता है।

(iii) **तमोगुणी**– यह तामसी या राक्षसी प्रकृति का व्यक्तित्व होता है। इसमें श्रेष्ठ गुणों का पूर्णतया अभाव पाया जाता है। ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का उद्देश्य अपने स्वार्थ हेतु समस्त कार्य करना तथा भौतिक सुख प्राप्त करना होता है। चाहे उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े।

सद्गुणी व्यक्ति का मूल उद्देश्य भावी जीवन को सुधारना एवं मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहना है, जबकि रजोगुणी व्यक्ति व्यावहारिक होते हैं तथा तामसी व्यक्ति वर्तमान सुख को ही महत्व देते है। सांख्यदर्शन, न्यायदर्शन, मीमांसा, अद्वैत वैदान्त आदि सभी उस व्यक्तित्व को उत्तम मानते है जो मोक्ष प्राप्ति हेतु सतत् प्रयत्नशील रहता है। योगदर्शन में, व्यक्तित्व के आए विकारों के योग के

माध्यम से दूर किया जा सकता है। ये आठ योग हैं– 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि।

व्यक्तित्व विकास की बौद्ध धर्म में संकल्पना– महात्मा बुद्ध द्वारा प्रदत्त उपदेशों का संकलन कर तीन धार्मिक बौद्ध ग्रन्थों, यथा विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्म पिटक की रचना हुई। बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवन में दुःख है और अज्ञान दुःख का कारण है। अतः इस अज्ञान को दूर करना ही मानव मात्र के जीवन का लक्ष्य है अर्थात् व्यक्तित्व विकास का लक्ष्य है।

बौद्ध दर्शन द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व विकास की धारणा को समझने हेतु बुद्ध द्वारा प्रतिपादित आर्य सत्यों एवं अष्टांग मार्गों का विश्लेषण आवश्यक है।

चार आर्य सत्य– (1) जीवन में दुःख है (सर्व दुःखम्), (2) दुःख का कारण है (दुःख समुदयः), (3) दुःख का अन्त सम्भव है (दुःख निरोध), (4) दुःखों को दूर करने के उपाय है (दुःख निरोधगामिनी प्रतिपाद)

आष्टांगिक मार्ग– सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् कर्म, सम्यक्, आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि।

बौद्ध दर्शन यह मानता है कि उपर्युक्त चार आर्य सत्यों एवं अष्ट मार्गों का अनुसरण करके ही मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास संभव है। व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास से आशय आत्म–सम्मान, आत्म निर्भरता, आत्म संयम, आत्म विश्वास, शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शुचिता आदि गुणों से युक्त होना है। महात्मा बुद्ध ने गुरू–शिष्य सम्बन्ध को बालक के व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हुए अध्यापक को विद्यार्थियों के लिए जीवित जाग्रत अनुसरण प्रतिमान (Role Model) बनने की आवश्यकता पर बल दिया। इस दर्शन की यह मान्यता है कि व्यक्ति स्वयं को सामाजिक हित के लिए समर्पित करके सुख, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत दुःख, तृष्णा, आकांक्षाएँ आदि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधक होती है। अतः व्यक्ति का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व मानवीय दृष्टि से परिपूर्ण हो।

निष्कर्ष– उपर्युक्त विवेचन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भारतीय दर्शन, श्रीमद्भगवत् गीता एवं उपनिषदों में 'व्यक्तित्व' के विविध पक्षों तथा उसके चरणों को जिस सूक्ष्मतम विधि से उद्घाटित किया है उससे व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का तो पता चलता ही है साथ ही साथ यह भी ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से क्यों व किस प्रकार भिन्न है?

कोई व्यक्ति कैसा आचरण करता हैं, सोचता है, अनुभूत करता है, कैसा व्यवहार करता है? यह सब उसकी मानसिक संरचना पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति की केवल वाह्य आकृति, बोलचाल का ढ़ंग, रहन–सहन आदि उसके व्यक्तित्व के केवल एक पक्ष हैं। ये व्यक्ति के सच्चे व्यक्तित्व को प्रकट नहीं करते। व्यक्तित्व का विकास वस्तुतः व्यक्ति के गहन स्तरों से सम्बन्धित हैं।

REFERENCES :

1. पाण्डेय, कल्पलता एवं श्रीवास्तव, एस॰एस॰ (2008), 'शिक्षा मनोविज्ञान', नई दिल्ली : टाटा मैकग्रो–हिल पब्लिशिंग कम्पनी।
2. भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान (2007), राष्ट्रीय संगोष्ठी पर आधारित (रायपुर, छत्तीसगढ़), लखनऊ : भारतीय शिक्षा शोध संस्थान।
3. शर्मा, आर॰ए॰ (2014), 'शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार, मेरठ : आर॰ लाल बुक डिपो।